

## ⇒: आभार प्रदर्शन :⇐



पुस्तक के प्रकाशन में निम्नानुसार धार्मिक सहयोग मिला है ।

जो उन सब सज्जनों का हादिक धामान प्रदर्शन करता हूँ ।

(१) दिगम्बर जैन समाज, सिरोंज (म. प्र.) २०० प्रदि

(२) श्री सी. प्र. शूभाबाईजी जैन (धर्मरत्न स्व. श्री हुकमचन्दजी वैद्यरत्न) सिरोंज २०० प्र

(३) श्री सच्चिदानन्द जैन भ्याल, सिरोंज २०० प्र

कुल ६,०००

धन्यो—

दिगम्बर जैन समाज, सिरोंज



[ भा ]

दि. जैन समाज सिरोम को है । इयका आशयान कर  
सभी यन्तु भारत कल्याणरत हों, ऐसी गरी धार्मिक है ।

विनीतः—

हजारोत्तल न।

कर्मन्त

दि. १-८-१८

# ॐ: शुद्धि-पत्रक :ॐ

---

कृपया निम्नांकित 'शुद्धि-पत्रक' से प्रति शुद्ध कर  
स्वाध्याय करें:—

पेज नं.	साइन नं.	अशुद्ध	शुद्ध
१.	१२	वारिष	वारिष
२.	२	जीव	जीव
३.	६	(घन्तर वियोग काल)	(घन्तर (वियोग काल)
११.	४	घेणा	घेणी
१२.	४	हाता	होता
१३.	२	दुर्गतो	दुर्गतो
१४.	१३	समुर्धन	संमुर्धन

[ ४ ]

पेज नं.	साइन नं.	अनुच्छेद	शुद्ध
		तोत्र	ती
१४.	५	तत्रलेख्या	तरले
१७.	६	सुर्वणकला	सुव
१०.	८	जोषों को	जी
२१.	१३	जोषों को	जी
२२.	१		
२७.	४	'नवप्रवेयक' के पदवात	'नव
		घाने से रह गया है, तो	वि
२७.	३	प्रणात	
२७.	१	दोष	
२७.	११	दम	
२६.	४	मनुष्यों	
२०.	१	हो है	
१०.	३	को	

[ ग ]

साइन नं.

	अशुद्ध	शुद्ध
१२	असस्थात	असंस्थात
७	लोककाश	लोकाकाश
१५	अवर्णवाद	अवर्णवाद
८	शोत	शोत
५	थत	थुत
२	सम्यकथ	सम्यक्थ
५	मोहनीय	मोहनीय
१	लोम	लोम
५	निमित्त	निमित्त
१५	चतुरिन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय
३	संघात १	संघात ५
१३	प्रशस्त	प्रशस्त
६	कर्म	कर्म

अक्षर नं.	साइन नं.	अक्षर	सुट
००.	८	च्युतन	च्युत न
०१.	१०	गियारह सम्भव परीपह हैं	गियारह परीपह सम्भव हैं
०२.	१२	एक्य	ऐक्य
०५.	११	सानु	साधु
०७.	३	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त
१४.	७	पवा	पावा

नोट:—द्रष्टि दोष से यदि झीरे भी अक्षरियाँ रह गई हों तो पाठक गण सुधार लें । ऐसी विनम्र प्रार्थना है ।



ॐ

श्री योतरापाय नमः

ॐ मोक्षशास्त्र ॐ

( तत्त्वार्थ सूत्र )

॥ मंगलाचरण ॥

मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्षण - भृताम् ।  
शातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद् गुण लब्धये ॥१॥

मोक्ष मार्ग में लेजाने वाले, कर्म स्वी पर्वतों के विदारक और जगत् के तत्वों को जानने वाले को इन गुणों की प्राप्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ।

॥ वहिना शम्भाय ॥

सम्बन्धदर्शन, ज्ञान, चरित्र इन तीनों का एक होना संसार के दुख से छुटकारा पाने का रास्ता है मर्यादा स्थायीता का साधन है ॥१॥





धन को ग्रहण करने वाला ज्ञान) से पदार्थों का जानना होता है ॥६॥

निर्देश (वस्तु स्वरूप का कथन) स्वामित्व (उत्तका अधिकारी) साधन (कारण) अधिकरण (भाषार) स्थिति (समय मर्यादा) और विधान (भेद) इनसे सात तत्वों तथा रत्नत्रय का ज्ञान होता है ॥७॥

सत् (भोज्यशयो) संख्या (गिनती) क्षेत्र (वर्तमान निवास) स्वर्गान (विकाल सम्बन्धी निवास) काल (प्रनाशनस्त आदि) (अन्तर विद्योग काल) भाव (स्वभाव) अल्प बहुत्व (बोड़ा बहुत पना) इनसे भी सात तत्वों तथा स० दर्शनादि का बोध होता है ॥८॥

मति, अत, मवपि, मनः पर्यय और केवल ये पाँच ज्ञान हैं ॥९॥

ये ही प्रमाण हैं ॥१०॥

इनमें आदि के दो ज्ञान परीक्षा हैं ॥११॥

शेष सब प्रत्यक्ष ज्ञान हैं ॥१२॥

मति, स्मृति, संज्ञा, चित्ता, अभिनिबोध, धर्म भेद रति  
मति ज्ञान के ही नाम हैं ॥१३॥

बह मति ज्ञान पाँच इन्द्रिय और मन के निमित्त से  
होता है ॥१४॥

मति ज्ञान के अवग्रह (दर्शन के बाद अव्यक्त ज्ञान)  
ईहा (विशेष जानने की इच्छा) अवग्रह (निर्णय का होना)  
धारणा (स्मरण बना रहना) ये चार भेद हैं ॥१५॥

बह, बहुविध, सिद्ध, अनिःसृत, अनुरत, ध्रुव और इनके  
उल्टे अल्प, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त, अध्रुव इन १२  
प्रकार की अवस्था वाले पदार्थों के अवग्रहादि रूप मति  
ज्ञान होता है ॥१६॥

उक्त चार प्रकार का मतिज्ञान, पाँच इन्द्रिय और मन के  
निमित्त से १२ प्रकार वाले पदार्थों के धर्म को ग्रहण  
करता है ॥ १७ ॥

अव्यक्त शब्दादि का अवग्रह ही होता है ॥ १८ ॥

किन्तु वह नेत्र और मन से नहीं होता ॥ १९ ॥

मति ज्ञान के निमित्त से श्रुतज्ञान होता है, वह दो प्रकार का है १ घंग वाह्य २ घंग अविष्ट । घंग वाह्य के दो भेद हैं, घंग अविष्ट के आचारणादि १२ भेद हैं ॥२०॥

देव और नारकियों को जन्म निमित्तक अवधि ज्ञान होता है ॥ २१ ॥

और अयोपशम निमित्तक अवधि ज्ञान मनुष्यों और पशुओं के होता है, जो छह प्रकार का है ॥ २२ ॥

मनः पर्यय ज्ञान के १ श्रुत मति २ विपुसमति, दो भेद हैं ॥ २३ ॥

इसमें विशुद्धि (परिणामों की शुद्धता) और अप्रतिघात (केवल ज्ञान की प्राप्ति पर्यंत बना रहना) की अपेक्षा होती है ॥ २४ ॥



क्योंकि यथार्थ अथवा अर्थ के भेद को जाने बिना, अज्ञानानुसार कृष्ण का कृष्ण जानने के कारण, सन्मत्त(पागल) समान, उक्त ज्ञान विपरीत होते हैं ॥ ३२ ॥

मंगल, सपह, व्यवहार, श्रुतुमूग, वाग्द, सममिहक, अज्ञान, ये नय के सात भेद हैं ॥ ३३ ॥

इस अध्याय में ज्ञान, दर्शन, तत्त्व, नय, इनका सफल प्रमाण है, और ज्ञान की प्रमाणाता दिखाई है ।

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

⇒ दूसरा पञ्चाय :⇐  
 • जीय तत्त्व •

श्रीपशुमिक जिसके होने में कर्म का उपशम निमित्त है ) क्षायिक ( जिसके होने में कर्म का निमित्त है ) मिथ ( जिसके होने में कर्म का निमित्त है ) शौचमिक ( जिसके होने में कर्म का निमित्त है ) और पारणामिक ( जो ब्राह्मण निमित्त के दृष्ट के स्वाभाविक परिणामन से है ) ये पांच भाव के निज भाव हैं ॥ १ ॥

इनके क्रम से दो, नौ, पठारह, इक्कीस, और भेद है ॥ २ ॥

सम्पत्त्व और धारित्र ये दो श्रीपशुमिक भाव हैं ।

ज्ञान, दर्शन, दान, लाम, भोग, उपभोग, धीर्य, सम्पत्त्व धारित्र, ये नौ क्षायिक भाव हैं ॥ ४ ॥





दर्शनोपयोग के ( प्रज्ञा, प्रवृत्त, प्रवृत्ति, केवल दर्शन )  
 चार भेद हैं ॥ १० ॥

जीव संसारी और मुक्त दो प्रकार के हैं ॥ १० ॥

मन वाले और मन रहित ये संसारी जीव हैं ॥ ११ ॥

ये संसारी जीव अस और स्वयंवर हैं ॥ १२ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पति-कादिक,  
 पाँच, एसावर हैं ॥ १३ ॥

दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रिय जीव  
 कहलाते हैं ॥ १४ ॥

इन्द्रियाँ पाँच हैं ॥ १५ ॥

ये प्रत्येक दो, दो प्रकार की हैं ( द्रव्येन्द्रिय और  
 भावेन्द्रिय ) ॥ १६ ॥

द्रव्येन्द्रिय के निर्णय ( इन्द्रियाकार-ए एव  
 उपकरण-निर्णय-की-साधक-वस्तु ) ये दो भेद हैं ॥ १७ ॥

(१) 'मांशद्वय' के दो भेद हैं, (१) जलिव्य (क्षयोपशम रूप शक्ति की प्राप्ति) २ 'उपयोग-निवृत्ति, उपकरण, तथा लज्जि के होने पर विषयों में सुगन्ता) ॥ १८ ॥

स्पर्शन (स्वचा) रसना (जीम) प्राण (नाक) चक्षु (बाँस) श्रोत्र (कान) ये पाँच इन्द्रियों के नाम हैं ॥१९॥

स्पर्श (स्वचा-का) - रस (जीमका) - गंध (नाक का) चक्षु (बाँस का) - शब्द (कान का), इस प्रकार ये छन इन्द्रियों के विषय हैं ॥ २० ॥

'भूतं' ('विचार' 'कर्त्ता') अने का विषय है ॥ २१ ॥

'वनस्पति' तक के जीवों के एक 'इन्द्रिय' है ॥ २२ ॥

लट, धीटी, भौरा, मनुष्य आदि के कम से एक, एक इन्द्रिय अधिक है ॥ २३ ॥

'मन' वाग्नेः जीव संज्ञीः कहलाते हैं ॥ २४ ॥



स्थान में दरीर रूप परिणामाना) धर्म जन्म और उपपाद (उत्पत्ति स्थान में स्थित वैदिकक पुद्गलों की दरीर रूप परिणामाना ) उपपाद जन्म इस प्रकार तीन भेद जन्म के हैं ॥ ३१ ॥

इनकी सञ्चिता, दीत, संश्रुत, मञ्चिता, चप्य, विपृत, तथा सञ्चिताञ्चिता, दीतोच्य, संश्रुत विपृत ये नव धीनि (उत्पत्ति स्थान) हैं ॥ ३२ ॥

अंशयुग्म (अंशयु = जिसमें बच्चा लिपटा रहता है । अंशय ( रक्त और धीर्य का बना हुआ, मत्त के समान कठिन, गोम अंडा) पीत (बैदा होते ही चलने फलने वाले) एत, तीन प्रकार के जीवों का धर्म जन्म होता है ॥ ३३ ॥

देव और नारदियों का उपपाद जन्म होता है ॥३४॥

वाही के जीवों का समुद्भूत जन्म होता है ॥३५॥

भौदारिक (सून दरीर), वैदिक (विद्विया से होने वाला), आहारक (छड़े हुए स्थानवर्ती मुनि ■ सूक्ष्म पदार्थ

के 'निर्णयोर्ध' व 'संयम' पासंगार्ध' प्रपट होने चांसा) है।  
 (कर्मिभयं शुक्ल प्रिमा वासा), 'कर्मण' (आभावरणादि क  
 का 'समूह) ये 'पाच' प्रकार के शरीर हैं ॥१२॥

पहिले शरीरों की वनिस्वत धयने २ शरीर सूक्ष्म हैं ॥१३॥

द्वितीय शरीर से पहिले २ के शरीर शरीर प्रदे  
 की प्रवेशा उत्तरोत्तर संश्रयान्त २ गुणे हैं ॥१४॥

तथा तीसरा 'कर्मण' शरीर प्रदेसों, की प्रवेशा, कर्मण  
 धनंत, गुणे २ हैं ॥१५॥

'तीसरे' शरीर 'कर्मण' शरीर 'वांसा' रहित है ॥१६॥  
 'ते शरीरों प्रनादि काम' से वासा के 'साय' संश्रयि  
 रतने वाले हैं ॥१७॥

तथा सब शरीरों कोषों के होने हैं ॥१८॥

इन को शरीरों की शरीर एक जोष के एक साय  
 बार शरीर एक हो गच्छे हैं ॥१९॥

१०) कान्त घरीर दृश्य विषयों के गुणाध्यायन से रहित है ॥८७॥

११) पौरुषिक घरीर, अर्ध घोर संमूर्धन अथवा वालों के होता है ॥८८॥

१२) अर्थात् अथवा नामे देव नारीकियों के वैकल्पिक घरीर होता है ॥८९॥

१३) अथवा मुनियों के शक्ति से वैकल्पिक घरीर होता है ॥९०॥

अथवा निमित्तक भी तैयस घरीर मुनियों के होता है ॥९१॥

साधारण घरीर पुत्र, विन्दु घोर वाया रहित है, यह प्रथम संवत्त मुनि के ही होता है ॥९२॥

नारधी घोर संमूर्धन जीव मनुंसक होते हैं ॥९३॥  
देव मनुंसक नहीं होते ॥९४॥

देव गर्भजतिर्यत्र चौर मनुष्य तीनों वेद वामे होते हैं ॥३२॥

घोषपादिक (देव नारकी) चरमोत्तम शरीरी (तद् भव मोक्षगामी तीर्थकरादिक) चौर प्रसख्यात वर्ष को शिशु वाले भोगसूत्रि के जीवों की प्रकृत मृत्यु नहीं होती ॥३३॥

इस अध्याय में जीव स्वभाव, लक्षण, गति, जन्म, योनि, देह लिंग, अनपरोक्षतायुक्त जीवों के वेद की प्रकृति की गई है ॥३॥

● इति द्वितीय अध्याय ●

☞ प्रथम तीसरा अध्याय : ६

० जीव तत्व ०

रत्न, शंकरा, शानुरा, पद्म, प्रथम, महामुद्रा  
ये छठ भूमि कम हो एक दूसरे के नीचे हैं। जो पनाग्यु,  
बाठ, प्राणा के मापार से स्थित हैं ॥१॥

उन भूमियों में कम से तीस लाख, पचसीस लाख,  
पुण्ड्रु लाख, इम लाख, तीन लाख, पाँच दम एक लाख  
और केवल पाँच नरक (रहने के स्थान) हैं ॥२॥

वे नारकी जीव सदैव अनुभव तनरलेष्या, परिणाम, वेह  
वेदना और विवत्या वाले होते हैं ॥३॥

वे परस्पर एक दूसरे को दुख देते रहते हैं ॥४॥

तीसरे नरक तक संकिलष्ट समुद्रों के द्वारा उत्पन्न  
किये गये दुख, वाले भी होते हैं ॥५॥



उनमें बसने वाले नारकी जीवों की बड़ी मायु ६<sup>६</sup> से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तेतीस साय को है ॥१॥

मध्यलोक में जम्बू द्वीप आदि चार लक्षण समुद्र आदि चन्दे २ नाम वाले असंख्यात द्वीप चार समुद्र हैं ॥७॥

ये सभी द्वीप चार समुद्र, पहिले कि द्वीप समुद्रों को घेरे हुये, एक दूसरे से जुगने २ विस्तार वाले, गोल गूड़ी के आकार में हैं ॥८॥

उन सब द्वीप समुद्रों के बीच में, एक मात्र वोजन विस्तार वाला, जम्बूद्वीप है, जो गोल है, जिसका केन्द्र गुमेरु पर्वत है ॥९॥

जम्बू द्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरम्यवत, एरावत-वर्ष ये सात क्षेत्र हैं ॥१०॥

उन सात क्षेत्रों को जुदा करने वाले पूर्व पश्चिम  
सम्बन्ध, ऐसे हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, एवमी,  
शिष्यते ये ६ वर्षपर (क्षेत्रों को धारण करने वाले) पर्वत  
हैं ॥११॥

ये छहों पर्वत क्रम से सोना, चांदी, तपाया हुआ सोना  
मीसम, चांदी और सोना जैसे रंग वाले हैं ॥१२॥

ये बगलों में मणियों से रंग बिरंगे तथा ऊपर और  
मूल में समान विस्तार वाले हैं ॥१३॥

इनके ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, त्रिगिण्ट, केतारी  
महापुण्डरीक, पुण्डरीक नाम के छह हृद हैं ॥१४॥

प्रथम हृद एक हजार योजन सम्या (पूर्व से पश्चिम)  
पांच सौ योजन चौड़ा (उत्तर से दक्षिण) है ॥१५॥

तथा दस योजन गहरा है ॥१६॥

इसके बीच में एक योजन का कमल है ॥१७॥

उनमें बगले बाने नारकी कीर्ती की बरी वानु ३२  
 से एक, लीन, मान, वन, सनम्, बाईम और लेनीम नाम  
 की हैं ॥१३॥

मध्यकोरु में जम्बू द्वीप आदि और मरुत समुद्र  
 आदि आधे २ भाग वाले अर्धव्यास द्वीप और बीच समुद्र  
 हैं ॥१४॥

के सभी द्वीप और समुद्र, पहिले के द्वीप समुद्रों की  
 घेरे हूये, एक दूसरे से दुगने २ विस्तार वाले, गोल गूरी  
 के आकार में हैं ॥१५॥

उन सब द्वीप समुद्रों के बीच में, एक साथ योजन  
 विस्तार वाला, जम्बूद्वीप है, जो गोल है, जिसका केन्द्र  
 सुमेरु पर्वत है ॥१६॥

जम्बू द्वीप में भरत, हिमवत, हरि, विदेह, रम्यक,  
 हरण्यवत, पुरावत-वर्ष ये सात क्षेत्र हैं ॥१७॥

उन सात क्षेत्रों को जुदा करने वाले पूर्व पश्चिम  
वे, ऐसे हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, स्वमी,  
सरो वे ६ वर्षेपर (क्षेत्रों को धारण करने वाले) पर्वत  
॥११॥

ये एत्यों पर्वत कम से सोना, चांदी, तपामा हुमा सोना  
जम, चांदी धोर सोना जैसे रंग वाले हैं ॥१२॥

ये बगलों में मणियों से रंग बिरंगे तथा ऊपर नीचे  
में समान विस्तार वाले हैं ॥१३॥

इनके ऊपर कम से पद्म, महापद्म, त्रिगिण्ठ, कैशरी  
हापुण्डरीक, पुण्डरीक नाम के छद्म हूद हैं ॥१४॥

प्रथम हूद एक हजार योजन लम्बा (पूर्व से पश्चिम)  
द्वितीय हूद सौ योजन चौड़ा (उत्तर से दक्षिण) है ॥१५॥

तथा दस योजन गहरा है ॥१६॥

इसके बीच में एक योजन का कमल है ॥१७॥

दोप हृद और उनके कमल इंसो दूने २ हैं ॥१८॥

उन कमलों में निवास करने वाली श्री, ह्री, वृं  
कीर्ति, युद्धि, महती ये छह देवियां, एक पत्न्य की वा  
वाली हैं, जो सामानिक, पारिषद देवों के साथ निवा  
करती हैं ॥१९॥

उन सात क्षेत्रों के बीच में से गंगा-सिन्धु, रोहिं  
रोहितास्या, हरित्-हरिकात्या, सीता-सीतोदा, नारी-  
कान्ता, सुर्यणकृशा-रूप्यकृशा, रक्ता-रक्तोशा, नाम  
नदियें बहती हैं ॥२०॥

... दो दो, नदियों में से पहिली पहिली नदी पूर्व समु  
को गई है ॥२१॥

बाकी नदियां पश्चिम समुद्र को गई हैं ॥२२॥

... गंगा-सिन्धु आदि नदियां थोदह हजार आदि नदियें  
से घिरी हुई हैं ॥२३॥

भरत क्षेत्र का वंसाव (उत्तर दक्षिण में) २२१½ योजन है ॥२१॥

विदेह पर्वत पर्वत घोर क्षेत्र, इससे दूने दूने विस्तार धारण है ॥२२॥

उत्तर के पर्वत घोर क्षेत्र आदि दक्षिण के पर्वत घोर क्षेत्र आदि के समान विस्तार के हैं ॥२३॥

भरत घोर एरावन में उल्लसिणी (बढ़ने रूप) घोर प्रवसविणी (घटने रूप) के छद्म समयों में (जीवों की प्रायु, क्षीण, वीर्य भोगोपभोग ज्ञान आदि में) पृथि घोर क्षय होता है ॥२४॥

इनके सिवा क्षेत्र भूमिवा घवस्थित (ज्यों की त्यों) हैं ॥ २५ ॥

... वैश्वत, हरिवर्ष, देवकृत के-जोवों की स्थिति क्रम से एक, दो, तीन पत्तयोपम है ॥ २६ ॥

हैरपयवत, रम्पक, उत्तर कुह, के जोवों की स्थिति भी उसी क्रमसे एक, दो, तीन, चत्सोपम है ॥ १० ॥

विदेहों में संख्यात यर्य की प्रायु वाले हैं ॥ ११ ॥

भरत क्षेत्र का विस्तार जंबू द्वीप का एक सौ नब्बेवां भाग है ॥ १२ ॥

घात की खंड द्वीप में मेरु, शेष आदि सभी जंबू द्वीप से दूने, दूने हैं ॥ १३ ॥

पुष्कर द्वीप के आधे भाग में भी सभी जंबू द्वीप से दूने, दूने हैं ॥ १४ ॥

मानुषोत्तर पर्वत के पहिले तक ही मनुष्य हैं ॥ १५ ॥

ये प्रायं मीर श्लेष्य वी प्रकार के हैं ॥ १६ ॥

देव कुह मीर उत्तर कुह को छोड़, कर, भरत, ऐरावत, विदेह क्षेत्र में कर्म भूमियां हैं ॥ १७ ॥

मनुष्यों को उत्कृष्ट स्थिति तीन बस्योपम घोर  
 शय्य, पन्न सुहृत् है ॥ ३८ ॥

तिर्यचों की स्थिति भी उतनी ही है ॥ ३९ ॥

इस अध्याय में भूविज, सित्या, चापु, हीर, समुद्र, पर्वत,  
 क्षेत्र, तामाह, नदी आदि का प्रमाण, मनुष्य तिर्यचों की  
 मायु के जेद का वर्णन दिया है ॥ १ ॥

॥ इति तृतीय अध्याय ॥



॥ अथ ननु अथवा ॥

॥ भो व ननु ॥

देवी के अथवा ननु अथवा ॥ १ ॥ अथवा देवी,  
२ अथवा ३ अथवा ४ अथवा ५ ॥ १ ॥

ननु के अथवा अथवा के अथवा अथवा  
अथवा ॥ २ ॥

अथवा अथवा के १०, अथवा के २ अथवा के  
२ अथवा अथवा के १२ अथवा ॥ ३ ॥

एत अथवा अथवा के देवी के अथवा के अथवा ( देवी  
का अथवा ) अथवा ( अथवा अथवा के अथवा अथवा  
अथवा के अथवा के अथवा ) अथवा ( अथवा अथवा  
३३ ) अथवा ( अथवा ) अथवा ( अथवा अथवा के  
अथवा के अथवा ) अथवा ( अथवा अथवा - अथवा  
अथवा ) अथवा ( अथवा ) अथवा ( अथवा अथवा )  
अथवा ( अथवा ), अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा ॥ ४ ॥

विष्णु बभ्रुवर्धन और अर्जुन के नामों से जानकार और  
 प्रसन्न रहें ॥५॥

मदनवासी और बभ्रुवर्धन के ही ही एक हैं ॥६॥

ऐसा तब के देव पुरुषों के उपास्य धरती के नाम  
 से करते हैं ॥७॥

देव ब्रह्म ब्रह्मा देव ब्रह्म से शरीर (नीमरे शीवे शरीर  
 ) करते से, रुद्र देखने से (वांशवे से घाटवे तब से) (गो  
 से बाह्रवे तब-तब गुनने से, और (तेरहवे से सोलहवे  
 तब) मन में विष्णु से, विष्णु मुख घोस्टे हैं ॥८॥

कार के देव काय वायुना से रहित हैं ॥९॥

मदन वासी देव १ अमुक, २ नाग, ३ विष्णु, ४  
 ४ सुपर्ण, ५ अग्नि ६ वात ७ स्तुति ८ उरुषि ९ हीव  
 १० दिगं कुमार से शा प्रकार के हैं ॥१०॥

॥ अथ अनुर्ध्व अष्टाव्य ॥

॥ जीव तत्त्व ॥

देवों के प्रमुख चार समुदाय हैं १ भवन वासी,  
२ व्यंतर ३ ज्योतिष्क ४ सामानिक ॥ १ ॥

एहिले के तीन समुदाय में पीत तक चार  
सेर्याएँ हैं ॥ २ ॥

भवन वासियों के १०, व्यंतरों के ८ ज्योतिष्कों के  
५ कल्प वासियों के १२ भेद हैं ॥ ३ ॥

इन चार प्रकार के देवों में हर एक के इन्द्र ( देवों  
का स्वामी ) सामानिक ( प्राज्ञा ऐश्वर्य को छोड़ कर  
दोय वासों में इन्द्र के समान ) गायस्त्रिंश ( मंत्री पुरोहित  
३३ ) पारिपद् ( सभासद ) धात्मरक्ष ( इन्द्र शरीर की  
रक्षा में नियुक्त ) लोकपाल (कोतवाल=स्थानीय  
रक्षक ) धनीक ( सेना ) प्रकीर्णक ( रथत=प्रज्ञा )  
धामियोग्य (सेवक), किस्विपिक ये दस दस भेद होते हैं ॥४॥

किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क में चायद्विंश और लीकपाल नहीं होते ॥५॥

भवनवासी और व्यन्तरों में दो दो हृद् हैं ॥६॥

ऐशान तक के देव पुरुषों के समान शरीर से काम सेवन करते हैं ॥७॥

शेष कल्प वासी देव क्रम से स्वर्ग (तीसरे, चौथे स्वर्ग में) करने से, रूप देखने से (पाँचवे से आठवे तक में) (नौवे से बारहवें तक-शब्द सुनने से, और (तेरहवें से सोलहवें तक) मन में वित्तवन से, विषय सुख भोगते हैं ॥८॥

ऊपर के देव काम वासना से रहित हैं ॥९॥

भवन वासी देव १ धमु, २ नाग, ३ विद्युत्, ४ सुपर्ण, ५ अग्नि ६ वात, ७ स्तनित्, ८ उदधि ९ द्वीप १० दिक् कुमार ये दस प्रकार

अंतर देव १ किन्नर २ किम्पुक्ष्य ३  
 ४ गन्धर्व ५ यक्षा ६ राक्षस ७ भूत = पिशाच ये  
 प्रकार के हैं ॥११॥

ज्योतिषो देव १ सूर्य २ चन्द्रमा ३ ग्रह ४  
 ५ प्रकीर्णक तारे ये पांच प्रकार के हैं ॥१२॥

ये मनुष्य लोक में मेरु को प्रदर्शिता करने  
 और निरन्तर गमन शील है ॥१३॥

इनके द्वारा किया हुआ काल विभाग है ॥१४॥

ये मनुष्य लोक के बाहर उड़े हुए हैं

जीमे तिकाय के देव वैमानिक हैं ॥१५॥

वेकलोपन्न (जिन में इन्द्र आदि की  
 पाई जाय) और कस्पातीत (ग्रहमेन्द्र) ये दो प्रकार के हैं

जो कम से ऊपर ऊपर रहते हैं ॥१६॥

तोषर्ध-ऐराण, सामलुमार-माहेन्द्र, ब्रह्मा-ब्रह्मीराज,  
 नाम्दन-कापिन्द्र, शुक्र-महाशुक्र, लतार-लतरार,  
 मानस-मलास, धारण-धम्पुत, ( ये १६ देवर्षी ) धीर  
 अर्धदेवक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अक्षरजित, सर्वर्षी  
 वेदि, में उक्तका निवास है ॥१२॥

विद्यति, प्रभाज, गुण, वीर्य, विद्या विद्युति, इन्द्रिय  
 भोग दासि, अरवि नाम की सामर्थ्य, ऊपर, ऊपर के  
 देवों में अधिक, अधिक है ॥१०॥

द्विगुण समक करने की इच्छा, धीर की ऊँचाई,  
 परिग्रह धीर अभिमान ऊपर, ऊपर के देवों में कम है ॥११॥

दो युगलों में पीत विद्या तीन युगलों में एक विद्या  
 धीर तीन में शुभल विद्या माने वैश है ॥१२॥

वैश्वंकोश गहरी, गहरी की 'कल्प, शक्ति' ॥  
 ब्रह्मा शोक ही लोकहितक देवों 'शुभ' ॥  
 एवाण है ॥१३॥

सारस्वत, घादित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अग्नि, घादित्य, ये आठ प्रकार के सौमन्तिक देव हैं ॥२३॥

विजयादिक ॥ देव दो बार मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष जाते हैं ॥२४॥

देव, नारकी, और मनुष्यों के अतिरिक्त सब संसारी जीव तिर्यक हैं ॥२५॥

असुर कुमार एक सागर, नाग कुमार तीन पत्न्य, सुपर्ण कुमार छह पत्न्य, शीप कुमार दो पत्न्य, बाकी के छह भवन वासियों की डेढ़ पत्न्योपम उत्कृष्ट स्थिति है ॥२६॥

सौधर्म और ऐशान में उत्कृष्ट आयु दो सायरोप से कुछ अधिक है ॥२७॥

सानकुमार माहेन्द्र में कुछ अधिक सात, सायरोप स्थिति है ॥२८॥

पवरोप युक्तों में दस, बीसह, सौतह, पठारह, बीस, बाईस, सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥३१॥

पारण मच्युत से ऊपर, नव संवेयकों में नव अनुदशों में, चार, विजयादिक में, एक, एक सागरोपम बढ़ती हुई उत्कृष्ट स्थिति है और सर्वार्थ सिद्धि में पूर्ण होती है। तैलीस सागरोपम प्रमाण स्थिति है, ॥३२॥

सौधर्म ऐशान में जघन्य स्थिति साधक एक प्रयोपम है ॥३३॥

पूर्व, पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति अनन्तर, अनन्तर की जघन्य स्थिति है, ॥३४॥

इसी प्रकार नारकियों में भी जघन्य स्थिति है ॥३५॥ पहले नरक के नारकियों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है ॥३६॥

इतनी ही भवन वामी देवों की है ॥३७॥



तथा व्यन्तरो की भी इतनी ही है यानो जघम्य  
 प्रायु दस हजार वर्ष की है ॥३८॥

व्यन्तरो की उत्कृष्ट स्थिति सायिक पत्नोरम है ॥३९॥  
 इतनी ही ज्योतिषो देवों की है ॥४०॥

ज्योतिष्कों को जघम्य प्रायु एक पत्न्य के घाठवां  
 भाग प्रमाण है ॥४१॥

सद्य सौकान्तिकों की स्थिति घाठ सागरोपम  
 प्रमाण है ॥४२॥

इस अध्याय में चारों निकाय के देवों के स्थान, भेद,  
 सैख्या, परापर स्थिति, मुखादि का निरूपण किया है ॥१॥

॥ इति चतुर्थ अध्याय ॥

## ॐ॥ मय पांचवां अध्याय ॥ॐ

### • अजीव तत्त्व •

धर्म, अधर्म, आकाश और पुरगल ये चार अजीव काय हैं ॥१॥

उक्त चारों द्रव्य हैं ॥२॥

जीव भी द्रव्य है ॥३॥

उक्त द्रव्य नित्य हैं, अवस्थित हैं, अक्षी हैं ॥४॥

किन्तु पुरगल द्रव्य क्षी हैं ॥५॥

धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्य एक, एक है ॥६॥

और निष्क्रिय है ॥७॥

धर्म, अधर्म और एक जीव द्रव्य के असंख्यात, असंख्यात प्रदेश होते हैं ॥८॥

आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी है ॥६॥

पुरगल के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं ॥१०॥

पुरगल पञ्चभूतु के प्रदेश नहीं होते ॥११॥

इन सब द्रव्यों का भवगाह लोकाकाश में ही है ॥१२॥

धर्म अधर्म द्रव्य का भवगाह पूरे लोकाकाश में है ॥१३॥

पुरगल का भवगाह लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में होता है ॥१४॥

जीवों का भवगाह लोक के असंख्यात वें भाग आदि में है ॥१५॥

यही कि जीव के प्रदेशों का दीपक के समान संकीच और विस्तार होता है ॥१६॥

गमन में और ठहरने में सहायक होना यह कमलाधर्म और अधर्म-द्रव्य का उपकार है ॥१७॥

स्थान देने में सहायक होना धाकान द्रव्य का  
उपकार है ॥१८॥

‘क्षीर, वचन, मन, दशासोच्छ्वास ये पुद्गलों  
का उपकार है ॥१९॥

तथा सुख, दुःख, जीवन, मरण ये भी पुद्गलों  
का उपकार है ॥२०॥

भाष्य में एक दूसरे का सहायक होना यह जीवों  
का उपकार है ॥२१॥ -

वर्तना (वर्तनकराना) परिणाम (पर्याय) क्रिया (हलन  
बलन रूप व्यापार) परत्व (बड़ा) अपरत्व (छोटा) होना  
ये काल के उपकार हैं ॥२२॥

पुद्गल स्पर्श, रस, गन्ध और रंग वामे होते हैं ॥२३॥

तथा वे शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, संस्थान, भेद,  
अपघकार, धाया, भातप, उद्योत वाले भी होते हैं ॥२४॥

घण्टु (वरमाणु), स्कन्ध (घण्टुओं का समूह) ये दो भेद पुद्गलों के हैं ॥२५॥

ये भेद ॥ संघात से घोर भेद, संघात, दोनों से स्कन्ध उत्पन्न होते हैं ॥२६॥

घण्टु भेद से ही उत्पन्न होता है ॥२७॥

भेद घोर संघात दोनों से अचाक्षुष स्कन्ध नेत्रों के विषय वाला होता है ॥२८॥

इष्य का सक्षण सत् (विद्यमानता) है ॥२९॥

जो उत्पाद (नवीन पर्याय की उत्पत्ति) इष्य (पूर्व पर्याय का विनाश), प्रीष्य (अनादि पारणामिक स्वभाव रूप से अन्वय बना रहना) इन तीनों से युक्त है। यह सत् है ॥३०॥

अपने स्वभाव से च्युत न होना नित्य है (अपनी जाति में रहते हुये, परिणामन करना, प्रत्येक पदार्थ का स्वभाव











ज्ञान और दर्शन के विषय में किये गये प्रदीप (बुझना दोष लगाना), निन्हाव (छिपाना), मात्सर्य (ईर्ष्या, छल करना) अन्तरांग (विघ्न डालना), आसादन (अन्य के द्वारा प्रकाशित ज्ञान को आच्छादित करना) उपघात (उसमें दूषण लगाना) ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के आश्रय के कारण हैं ॥१०॥

मित्र आत्मा में, पर आत्मा में या उभय आत्माओं में स्थित दुःख (पीड़ा), शोक (वेद), नाप (भ्रंताप), आश्रन्दन (रोना), बध (मारना), परिदेवन (विभाव करना) ये असाता वेदनीय कर्म के आश्रय के कारण हैं ॥११॥

जीवों पर और प्रतियों पर व्या करना, दान (पाहार, औषधि, शस्त्र, अन्नय) देना सत्यन सयम आदि का उचित ध्यान रखना तथा अज्ञान और शोक (निर्लोभता) ये साता वेदनीय कर्म के आश्रय के कारण हैं ॥१२॥

देवसी श्रुत मुनिर्भाष धर्म और देव का व्यवहार (जिसमें जो दोष नहीं है, उसमें उनको कहना करना)

ये दर्शनमोहनीय कर्म के फल के कारण है ॥१३॥

कषाय के उदय से होने वाला धारमा का तीव्र परिणाम (स्वयं से भयवा दूसरों में कषाय उत्पन्न करना, वतों में दूषण लगाना आदि) चारित्र्य मोहनीय कर्म के फल का कारण है ॥१४॥

बहुत धारम्भ और परिषद् के भाव नरकायु के फल का कारण है ॥१५॥

माया (धन धर्म) करने के भाव से त्रिषुष फल का फल होता है ॥१६॥

धर्म धारम्भ और परिषद् के भाव से मनुष्यायु का फल होता है ॥१७॥

स्वामात्रिक (आत्मिक) मृदुता (कोमलता) से जो मनुष्यायु का फल होता है ॥१८॥

धर्म ( ३ गुणधर्म ४ विशास्त्र ) रहित, धर्म का

(अहिंसादि ३ वन) रहित के सभी पापुषों का प्राग्व  
होता है ॥१६॥

सगण संघम (सर्गांग दुन संघम) संघमाहंघम (घना  
प्रठ ह्य परिहाम, माने देन पारिभ) घनाम निर्मंग  
(परघन के श्रान्त बापादि को घान्त से महन करमा)  
बासठन (ममालठप) से देवापु का घासव होना है ॥२०॥

सुम्यन्दान भी देवापु के घासव का कारण है ॥२१॥

मन, वचन, काय की दुहितना, घोर घन्यया प्रवृत्ति  
के, घंनुमनाम कर्म का घासव होता है ॥२२॥

योषों की सरसता घोर घन्यया प्रवृत्ति के,  
घुषनाम कर्म का घासव होना है ॥२३॥

१ दर्शन विबुद्धि (सम्यग्दर्शन के साथ लोक कल्याण को भावना) २ विनय सम्पन्नता ३ शील और व्रतों का निरतिचार पालन ४ सतत ज्ञानोपयोग ५ सतत स्वीय ६ शक्त्यनुसार त्याग ७ धीर तप ८ साधु समाधि ९ वैयाघ्रस्य करण १० महिम्नाभक्ति ११ आचार्य भक्ति १२ बहुश्रुत भक्ति १३ प्रवचन भक्ति १४ पडावश्यक क्रियाओं को नहीं छोड़ना १५ मार्ग प्रभावना १६ प्रवचन वात्सल्य, ये सोसह भावना तीर्थङ्कर नाम कर्म के साक्षर को कारण हैं ॥२४॥

पर की निन्दा और अपनी प्रशंसा करना दूसरे के सब गुणों को (विद्यमान गुणों को) ढंकना, धीर अपने में सब गुण न होते हुए भी अपने को गुणी प्रगट करना, नीच गोग कर्म के साक्षर का कारण है ॥२५॥

[ ४१ ]

परशुन्सा, घातम निदा, निरभिमानता, दूयुरों के गुण  
बट करना, विनय प्रवृत्ति, आदि से उच्च गोत्र का  
मास्य होता है ॥२१॥

विघ्नकरना (दान साम आदि में बाधा डालना)  
अन्तराय कर्म के मास्य का कारण है ॥२७॥

इस अध्याय में योग, सात्व, कर्माय, भावना, किया  
मापार भेद का कथन किया है । १॥

❧ इति षट्था अध्याय ❧

• षष्ठ सातवां अध्याय •

• शुभ आश्रव तत्त्व •

हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह से निवृत्त  
व्रत है ॥१॥

इनसे क्वचित् विरक्त होना देश-  
और पूर्ण विरति महाव्रत है ॥२॥

इन व्रतों से स्थिर होने के  
पाँच पाँच भावनाएँ हैं ॥३॥

वचन गुप्ति (मीन धारण  
चिन्तन करना), ईर्ष्या समिति (स.  
निदोषस्य समिति (वस्तु को देश  
आलोकित पान भोजन (दिन में दो  
पान करना) ये अहिंसा व्रत की

शोथ, श्लेष्म, मूत्र, हास्य वा त्याग, निर्यो बोगना (पुन-  
 ीचि शारण) से मरुत वन की वीच भावनायें हैं ॥१४॥

दुग्धाहार (मासी स्थान में) में रहना, विषोषणा वाम  
 (हिंसी के छोटे छूटे स्थान में रहना), परोरगोषाकाणु (वाम  
 शाल्मनुक की गहने में नहीं रोचना), सर्वाथ मुक्त मित्रा मेना,  
 शाल्मिनी से कसट न करना, ये शरीर वन की वीच  
 भावनायें हैं ॥१५॥

शिरों में अनुगम उत्तम करने वाली बहुरिणी के गुनने  
 का, शीतने का, त्याग, शिरों के गुन्दर शैली की दृष्ट्य पूर्वक  
 देखने का त्याग, पद्विभ भोगे हुए शीतों की वाय नहीं करना,  
 शाल्मनुक वीचिक शान पान नहीं करना, शरीर की  
 श्वावट नहीं करना, ये शरीर वन की वीच भावनायें  
 हैं ॥१६॥

शिरों श्मिरीयों की गुहावने तथा अनुगमने, शिरों  
 श्मिरीयों में, शयन श्मिरीयों में श्मिरीयों वन की वीच  
 भावनायें हैं ॥१७॥



• अथ सातवां अध्याय •

• शुभ आश्रय तत्त्व •

हिमा, भूँट, थोरी, मैपुन, परिण्ड त्त निवृत्त होना  
ब्रह्म है ॥१॥

इसमें क्विचित् विरक्त होना देव-विरति (मरुतु ब्रह्म)  
और पूर्ण विरति महाब्रह्म है ॥२॥

इस ब्रह्म में विपर होने के निश्चि प्रत्येक ब्रह्म की  
वाच वाच भावनायें हैं ॥३॥

ब्रह्म गुण (मौन कारण करना), मनो गुण (मात्र  
चिन्तन करना), ईश्वर ममिनि (मात्रकारी में चमना) आशान  
निशोरण ममिनि (ब्रह्म को देव भाव कर उठाना करना),  
आशोचिन वाच भोजन (दिन में देव कर लोच कर भोजन  
वाच करना) के अद्विमा ब्रह्म की वाच भावनायें हैं ॥४॥

शोध, लोभ, मय, हास्य का त्याग, निर्दोष सोचना (मनु-  
वीचि भाषण) ये सत्य व्रत की पाँच भावनायें हैं ॥५॥

दूर्याकार (सातो स्थान में) में रहना, विभोचिता वास  
(दिसी के छोड़े हुये स्थान में रहना), परोपभोयाकरण (अन्य  
माणतुक्त को रहने से नहीं रोचना), सर्वविधि मुक्त मित्रा लेना,  
कायनियों से कमह न करना, ये अशोच्य व्रत की पाँच  
भावनायें हैं ॥६॥

द्विषों में अनुराग उत्पन्न करने वाली कहानियों के सुनने  
का बाँवने का; त्याग, द्विषों के मुन्दर घोंगों को इच्छा पूर्वक  
देखने का त्याग, पहिले भोगे हुए भोगों को याद नहीं करना,  
कामाशोकक पीठिक खान पान नहीं करना, शरीर की  
सजावट नहीं करना, ये अक्षय्य व्रत की पाँच भावनायें  
हैं ॥७॥

पाँचों इन्द्रियों को मुहावने तथा समुहावने, पाँचों  
विषयों में, राग द्वेष नहीं करना ये अपरिग्रह व्रत  
पाँच भावनायें हैं ॥८॥

हितादि पाँच पापों के करने से यह लोक और पर-  
लोक दोनों का विनाश होता तथा उभय लोक में निन्दा  
का पात्र होता, इसलिये इन पापों के त्याग करने में ही  
घपना कल्याण है ऐसा चिन्तन करना चाहिये ॥१॥

घपवा ये दुख रूप ही है ऐसी भावना करनी  
चाहिये ॥१०॥

घाली मात्र में मंत्री (नबको घाना जैसा समझना),  
अधिक गुणवान में प्रमोद (हर्ष होना . दुखियों पर दया,  
अनिशियों में माध्यम्य (राग द्वेष रहित) भाव की  
भावना करनी चाहिये ॥११॥

सर्वज्ञ और वैशम्य के लिये मत्तार और तारीर के  
स्वभाव का चिन्तन करना चाहिये ॥१२॥

राग द्वेष रूप प्रकृति से भाव प्राण और इन्द्रिय प्राण  
का विनाश करना हिंसा है ॥१३॥

घसन् बचन बोसना घमस्य है ॥१४॥

बिना दी हुई वस्तु का लेना चोरी है ॥१५॥

मैथुन (विषय सेवन) करना अव्यक्त (जुगुप्त) है ॥१६॥

अन्तरंग बहिरंग चेतन प्रचेतन किसी भी वस्तु में -  
अपनत्व या स्वामित्व का अनुभव करना परिग्रह है ॥१७॥

जो शून्य (माया, मिथ्या, निदान) रहित हो, वही  
व्रती है ॥१८॥

व्रती गृहस्थ और मुनि के भेद से दो प्रकार के हैं ॥१९॥

अणुवर्तों का पारक गृहस्थ है ॥२०॥

वह गृहस्थ दिग्भ्रमति (दिशाओं में घाने जाने को  
मर्यादा), देश विरति (नियत समय के लिये क्षेत्र मर्यादा),  
अनर्थ दग्ध विरति (बिना प्रयोजन के निरर्थक व्यापार का  
त्याग) ये तीन गुण व्रत और सामायिक (नियत समय के  
लिये, विषय सम्बन्धी, बाह्य प्रवृत्ति से निवृत्त होकर,  
समता भाव से, एकत्व का अभ्यास करना तथा एतौकार

मन्त्र आदि का चिन्तन करना) प्रोषणोपवास (पर्व के दिन पंचेन्द्रियों के विषयों से निवृत्त होकर चार प्रकार ॥ आहार का त्याग करना) उपभोग परिभोग परिमाण (भोजन पानादि उपभोग, विद्योना वस्त्रादि परिभोग इनको आवश्यकता से कम करते हुए परिमाण करना (इस व्रत में उपभोग, परिभोग की वस्तुएँ बढ़तते रहने का कम जीवन पर्यन्त व्रती प्रतिदिन प्रतिपाण करता रहना है), अतिवि संविभाग (ग्यायोगावित इष्य में से सौंपवियों को भक्ति भाव पूर्वक आहार औपचारि देना) ये चार शिवा व्रत हैं । इस प्रकार पाँच अणु व्रत, तीन गुण व्रत, चार शिवा व्रत; इन बारह व्रतों का व्रती गृहस्थ को निर्दोष प्राप्त करना चाहिये ॥२१॥

वह गृहस्थ जीवन के अन्तिम समय में मल्लेखना (मते इष्टार से काय और कषाय का हटा करने वाला) का भी धारापक होगा है ॥२२॥

संज्ञा (पदों के मूलाकार के दिग्ग में संज्ञा, करना, संज्ञा (एक मोड़ छोड़ पासोड़ के दिग्गों को समिभाना) करना, विचरिदना (मृत्तियों के लीर को चरितन दैल पुगा करना), पश्य इष्टि इष्टि (दिररीठ मादियों की ठारीक करना), पश्य इष्टि मंतनक (विष्णा इष्टियों में विदमान सविदमान गुणों की बहाई करना) ये सभ्यगर्जन के पांच घतिषार हैं ॥२३॥

पांच द्रव छोड़ सात्र लोच के भी पांच पांच घतिषार हैं ॥ जो कम के इस प्रकार हैं ॥२४॥

बन्ध (बाधना), बध (भारना), छेद (सबसव ऐदना), घधिक मोमर सादना, जाना बीना रोचना ये घटिसाणु द्रव के पांच घतिषार हैं ॥२५॥

मिष्पीरदेव (झूठी जिज्ञा, झूठी गवाही देना) रहोम्यास्यान (गुप्त बात प्रगट करना), झूठा मत्रपूत (मेल)

[ १० ]

निसना, सूखी हुई धरोहर हड़पना, किसी वेषा से पर के  
 धमिषाय को जान कर भगट कर देना, ये सत्याणु व्रत  
 के पाँच प्रतिचार हैं ॥२६॥

धोरी करने का उपाय बताना, धोरी करके साथे हुए  
 इष्य को लेना, राज्य के नियमों का उत्संघन करना, देने  
 लेने के बाट घादि कम बड़ रसना, धसनी में नकली  
 वस्तु मिमाकर बेचना । ये प्रवीर्याणु व्रत के पाँच  
 प्रतिचार हैं ॥२७॥

गृहस्थ कर्तव्यातिरिक्त विवाह करना, विवाहिता  
 ध्यमिषारिणी छो गमन, अविवाहित कन्या: बेत्या घादि  
 गमन, कामाग छोड़ कर धन्य धर्मों में लीड़ा करना, काम  
 सेवन की अत्यन्त धमिमाया होना, ये ब्रह्मचर्याणु व्रत के  
 पाँच प्रतिचार हैं ॥२८॥

धेठ-मकान, धादी-सोना, पनु-धान्य, नोकर-नोकरानी

कंधा-वर्तन के निश्चित प्रमाण का उल्लंघन करना । ये परिग्रह परिमाण्यु व्रत के पाँच प्रतिषेध हैं ॥ २६ ॥

निश्चित की हुई, ऊपर की सोमा, नीचे की सोमा, तिरछी सोमा का उल्लंघन करना तथा चारों घोर के निश्चित परिमाण में से किसी एक दशा का दोग बड़ा लेना, निश्चित दोष मर्यादा को मूल जाना । ये दिग्बिरति व्रत के पाँच प्रतिषेध हैं ॥३०॥

स्वयं न जाकर मर्यादा से बाहर की वस्तु को किसी दूसरे के लिये साने की प्रेरणा करना, न तो स्वयं जाना न दूसरे को भेजना, किन्तु बैठे बिठाये नोकर आदि को आज्ञा देकर काम करा लेना, मर्यादा के बाहर स्थित किसी व्यक्ति से छन्द के द्वारा काम लेना, बिना बोले केवल साकृति से संकेत करना, कंकर पत्थर फेंक कर काम निकालना । ये दिग् बिरति व्रत के पाँच प्रतिषेध हैं ॥३१॥



राम वश हास्य के साथ अस्वस्थ भाषण करना, दूसरे को मध्य करके पारारिक कुचेष्टायें करना, घृष्टता पूर्वक व्यर्थ प्रहार करना, अविचारित भावःयकता से अधिक कार्य करना, भावःयकता से अधिक भोग उपभोग के पदार्थों का संपह व व्यय करना । ये पाँच अनर्थ दण्ड विरति व्रत के अतीचार हैं ॥३२॥

सामायिक करते समय १ शरीर को स्थिर न रखकर चलते रहना, २ गुनगुनाने लगना, ३ मन में अन्य विकल्प माना, ४ ज्यों त्यों कर सामायिक को पूरा करना, ५ पाठ या भावःयक क्रिया को स्मृति न रहना । ये सामायिक व्रत के पाँच अतीचार हैं ॥३३॥

बिना देखे शोधे १ जमीन पर मल मूत्रादि करना, २ उपकरण लेना, ३ विस्तर बटाई आदि विधाना, ४ लरसाहू न रख व्रत का अनादर करना, ५ चित्त की अचलता वश व्रत को भूल जाना, ये प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतीचार हैं ॥३४॥

१ अचिताहार (अन्नसिद्धि पाटा आदि का भोजन में उपयोग करना), २ अचित्त सम्बन्धाहार (उत्पुल्ल अचिता वस्तु से अचित्त, अचिता वस्तु का सम्बन्ध ही गया ही उन्ही भोजन में लेना), ३ अचिता अस्मिन्धाहार (धुइ वस्तुओं से अचित्त भोजन का आहार करना) ४ अचित्त-आहार (पुष्टिकर आदक इव परार्थ तथा अरिष्ट पदार्थों का सेवन करना) ५ दुष्पचसाहार (अचिता अचित्त तथा अस्मिन्धा या, जसा दुष्प भोजन करना) ये अचिता परिमोग परिमाण वन के पांच अतीचार हैं ॥१५५

आन वान की वस्तु अचित्त के काम न आरके इस अचित्तप्राय वे १ अचिता परो आदि पर रख कर देना २ अचित्त पत्ता आदि ले रक देना ३ अचिता चीज की अचित्त की रह कर देना ४ अनादर भावरक्षना ५ अचिता के समय को टाल कर देना ये अचित्त अचित्तप्राय वन के पांच अतीचार हैं ॥१५६॥

१ मन्थार वैशाख्यादि देव जाने की इच्छा, २ सन्धार  
 रोषादि न देव उन्नी करने की इच्छा ३ विषों के अनुपान  
 का स्मरण ४ पूर्व में भोगे हुए मोनों का स्मरण ५ ठण  
 आदि के फल को भोग के रूप में चाह (निदान) के  
 सल्लेषना व्रत के पाँच अतोचार हैं ॥१३॥

घानी घोर पर की भलाई के लिये अपनी वस्तु का  
 त्याग करना, दान है ॥१४॥

विधि, द्रव्य, दान, घोर पात्र की विशेषता से व्रत  
 के फल में विशेषता आती है ॥१५॥

इस अध्याय में व्रत, घोर व्रतों की भावना,  
 शील व्रत, अतोचारादि का निरूपण दिया है ॥१६॥

❖ इति सातवा अध्याय ❖

० अन्ध तन्व ०

विद्या दर्शन, शत्रु का अन्वयार्थ अज्ञान) अविदित  
 (छद्म काय के बीषों की हिंसा थी वरि इन्द्रिय मन के  
 विषय में विरक्त न होना) प्रसाद (घाने कर्मन्ध से  
 अनादा मात प्रगाथपानना) श्वाय (वांरिभ रूप घान  
 परिष्ठाती से अन्निर्भता) योग (घान्म अदेतो का परिष्ठाद)  
 ये पाच अन्व के शरणा है ॥१॥

जीव श्वाय महिन होने से, कर्म के योग्य (सायद)  
 पुद्गलों को अहण करता है, अह अन्व है ॥२॥

अग्रे, अहनि (कर्म रूप स्वभाव का पदना) अिदि  
 (काम अर्थात्) अनुभव (कल देने को अिदि) अंश(एक  
 दोआवनाह रूप अन्व) ये, चार अेद है ॥३॥



द्विजा गिण (विद्ये वद डे डूरी वद डीर वदरे,  
 विद्ये वदरे वर डी व वद डरे) ३ वचना ( इत वद  
 व डद डी नीर डे विद्ये डे, विद्ये डे डे डे डी  
 नीर वदरे ) ४ वचना वचना (विद्ये डे डे डे डे ४  
 वदरे वदरे वद वद नीर वदरे) ५ गगन वृद्ध ( वदरे ४  
 वदरे वदरे डी वदरे वर वदरे वद व वदरे) ६ डी  
 वदरे वदरे के डे डे ११११

विद्ये वद वद वदरे वदरे डे विद्ये डे,  
 वद वदरे वदरे, वदरे डी वदरे डे डे डे डे विद्ये डे,  
 वद वदरे वदरे, डे डे वदरे वदरे के डे डे ११११

वदरे वदरे के डे डे डे विद्ये वदरे वदरे वदरे  
 के वदरे वदरे के वदरे वदरे डे डे डे डे विद्ये डे,  
 वदरे विद्ये वदरे वदरे वदरे वदरे वदरे डे डे

वाचक न होकर भी उसमें बल, मतिन, प्रगाढ़ होय के  
 उत्पन्न करने में निमित्त है, वह, सम्यक्ब मोहनीय  
 जिसका उदय मिले हुए परिणामों के होने में निमित्त  
 जो न केवल सम्यक्त्व रूप, और न केवल मिथ्यात्व  
 किन्तु उभय रूप होते हैं, वह मिथ्य मोहनीय कर्म  
 से दर्शन मोहनीय के ३ भेद हुए । चारित्र मोहनीय  
 भेद है १ प्रकृपाय वेदनीय २ कृपाय वेदनीय ।  
 वेदनीय के भी भेद १ हास्य ( जो हंसी में निमित्त  
 २ रति (जो लीला में निमित्त हो,) ३ परति  
 (छेद) ४ मय (हर) ५ जुगुप्सा (ग्लानि)  
 (जो दो भावों के होने में निमित्त है) ६  
 ६ नपुंसकवेद, ये भी प्रकृपाय वेदनीय के भेद  
 कृपाय वेदनीय के सोमह भेद १ संसार का क  
 से मिथ्या दर्शन प्रकृत कहमाता है, जो

पनुबन्धी हो, वह अनन्तानु बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ है । २ जिसका उदय जीव को देश प्रती नहीं होने में निमित्त है, वह अग्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, है । ३ जिसका उदय जीव के सर्व विरति के नहीं कारण करने में निमित्त है, वह अग्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ है । ४ जिसका उदय सर्व विरति का अंतबन्धक नहीं, किन्तु प्रमाद के लगाने में निमित्त है वह अग्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ है । इन तरह मोहनीय कर्म के अष्टाईस भेद हुए ॥६॥

। जिसका उदय गरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देवपर्याय में जाकर जीवन किताने में निमित्त होता है, वे गरक, तिर्यञ्च, मनुष्य देव चायु कर्म के चार भेद हैं ॥१०॥

। नाम कर्म की प्रकृतियाँ २ गति ४ (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य देव ) २ जाति २ ( एकेन्द्रिय, दोन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय ) ३ शरीर २ (भौतिक, धैकियिक,



आहारक, तैत्रस, कार्माण), ४ अंगोपांग ३ (घोदारिक, वैकियक,  
 आहारक) ५ निर्माग २ (स्वान, प्रवाह), ६ बन्धन ३  
 (घोदारिक, वैकियक, आहारक, नैजस, कार्माण), ७ संघात १  
 (घोदारिकादि), ८ संस्थान ६ (ममचतुरस्र, न्यग्रोध परिर्मंडल,  
 स्वाति, कुब्जक, वामन, हुण्डक), ९ सहनन ६ (वज्ररूप  
 नाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीतक,  
 सप्तशाला सुगाढका), १० स्पर्श ८ (कर्कश, मृदु, गुरु, लघु,  
 स्निग्ध, रुक्ष, शत, उष्ण) ११ रस ५ (तिक्त, कटु,  
 कषाय, आम्ल, मधुर), १२ गन्ध २ (सुगन्ध, दुर्गन्ध),  
 १३ वर्ण ५ (शुक्ल, कृष्ण, नील, रक्त, पीत), १४ आनुपूर्व्य  
 ४ (नरक, तिर्यक, मनुष्य, देव गत्यानुपूर्व्य), १५ अगुणलघु,  
 १६ उपघान, १७ परघात, १८ घातप, १९ उद्योत,  
 २० उच्छ्वास, २१ विहायो गति २ (प्रशस्त, अप्रशस्त),  
 २२ प्रत्येक शरीर, २३ साधारण शरीर, २४ अम

२१ स्यावर, २६ मुभग, २७ दुर्भग, २८ मुस्वर,  
 २९ दुस्वर, १० घुम, ३१ घग्भुभ, ३२ गूढम गरीर,  
 ३३ वाहर गरीर, ३४ पर्याप्ति, ३५ अपर्याप्ति, ३६ क्षिपर,  
 ३७ अक्षिपर, ३८ प्रादेय, ३९ अनादेय, ४० यशःशोधि,  
 ४१ अयशःशोधि, ४२ तीर्यद्वुरत्व (भेदों की विवक्षा से वे  
 ॥ प्रकृतियाँ हैं) नाम कर्म की हैं ॥११॥

गोत्र (जिस कर्म का उदय उच्च गोत्र के प्राप्त करने  
 में निमित्त है, वह उच्च गोत्र तथा नीच गोत्र के प्राप्त  
 करने में निमित्त, वह नीच गोत्र ये दो गोत्र कर्म के  
 भेद हैं ॥१२॥

अन्तराय कर्म की पाँच प्रकृतियाँ (दान, लाम, भोग,  
 उपभोग, शीर्य) जिसका उदय दानादि करने के भाव न  
 होने देने में निमित्त हो वह अन्तराय कर्म ॥ १३॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अन्तराय इन चार

[ ६२ ]

की सबसे बड़ी स्थिति तीस कोड़ा कोटी सागर की है ॥ १४ ॥

मोहनीय की जिणदा से जिर्गंदा स्थिति सार कोड़ा कोटी सागर की है ॥ १५ ॥

नाम और मोश की बड़ी स्थिति बीस कोड़ा कोटी सागर की है ॥ १६ ॥

घामु की बड़ी स्थिति तेतीस सागर की है ॥ १७ ॥

वेदनीय की कम से कम स्थिति बारह मुहूर्त (नौ घंटे छरोस मिनट) की है ॥ १८ ॥

नाम और मोश की कम से कम स्थिति (टिकाव) आठ मुहूर्त (छह घंटे बीस मिनट) की है ॥ १९ ॥

शानावरण, दर्नावरण, मोहनीय, चम्तराय घामु इन पाँच की कम से कम स्थिति चत्तर मुहूर्त (चत्तरासी

मोट के नीचे भोग) की है ॥ २० ॥

ज्यों मैं विशिष्ट प्रकार के फल देने की इच्छा का  
हूँ बना, उसे अनुभव करते हैं ॥ २१ ॥

-इस विश्व हमें का जैसा नाम है - उससे अनुभवा  
होता है ॥ २२ ॥

और उसके बाद (फल मिल जाने के बाद) निर्दिष्ट  
रूप बन फल देकर धारणा में समाप्त हो जाता है)  
होती है ॥ २३ ॥

प्रति समय योग विद्वेष से कर्म प्रकृतियों के कारण  
सूत्र, सूत्रम, एक दोषावगाही और स्थित अनन्तान्त  
पुद्गल परमाणु सब धारण प्रदेशों में सम्बन्ध की  
प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

(मोट:-इस सूत्र में (१) इन बंधने वाले कर्मों द्वारा ही  
ज्ञानावरणादि असंग असंग शक्तियों का निर्माण



(८) प्रति समय बंधने वाले क्रम परमाणु  
अनन्तानन्त होते हैं ।

उक्त पाठ वाली में प्रदेश बन्ध विषयक  
प्रकाश डाला है ॥२७॥ )

छाता वैदनीय, पुत्र प्राणु, शुभ नाम, शुभ योज ये  
प्रकृतियाँ पुण्य रूप हैं ॥२८॥

द्वेष सब प्रकृतियाँ पाप रूप हैं ॥२९॥

॥१॥ अध्याय में बन्ध हेतु अक्षरों में मूल उत्तर  
प्रकृति नाम तथा उनकी स्थिति और पुण्य पाप प्रकृति  
आदि का क्रम किया है ॥१॥

७ इति भास्करा अध्यायः •



पूर्व शक्ति न होना बुद्धि है तत्र ॥

संज्ञा पांच है १. र्था (सत्यकार पूर्वक बचन)  
 २. भावा (हित मित मिय बचन बोधना) ३. देवता  
 (शिव आहार केना), ४. आत्मन निदोःस्तु (दित शोध  
 कर कानु को दखाना य रचना), ५. उरवर्न (कानु गदित  
 पुन पर मत मृशाद त्याग करना) ये पांच संज्ञा  
 है तत्र ॥

धर्म के इस भेद हैं १. उत्तम धर्मा (बोध के कारण  
 नितने पर भी महनशीलता का बना रहना) २. उत्तम  
 मोर्दव (घहंकार न होकर मध्र माध्र होना), ३. उत्तम  
 धार्मिक (मन, बचन, काय की प्रवृत्ति को सरन रखना)  
 ४. उत्तम शोध - (सब इवार के सोम का त्याग करना)  
 ५. उत्तम मय (हित मित मिय बचन, बोधना), ६. उत्तम  
 कयम (सुदु काय के जीवों की रखा करना धोर इन्द्रियों  
 को अपने अपने विषयों में प्रवृत्त नहीं होने देना) ७ उत्तम  
 तप (इन्द्रियों का एक जाना), ८. उत्तम त्याग (संयमियों



में स्थित प्राणी नाना दुःख भोग रहे हैं, यदि मोक्ष के स्वभाव का विस्तार करना १), ११ बोधि दुर्लभ ( रत्नशयन रूप बोधि को प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है । ), १२. धर्म ( जिन देव द्वारा प्रतिपादित धर्म प्राण करने से ही इस आत्मा का संसार परिधमण सूता है और वे मुक्त परमात्म पद प्राप्त कर लेती है । ये १२ भावना हुई ॥ ७ ॥

मार्ग से व्युत्पन्न होने के लिये, और कर्मों का दाय करने के लिये, जो सहन करने के योग्य हों वे परीण्ड है ॥ ८ ॥

० जो ब्राह्मण हैं १ ब्रह्म २ व्यास ३ शर्मा ४ पर्या ५ शक्ति  
 ६ चन्द्र काटने की ७ नये रहने की ८ संवत् में अरवि  
 ९ करने की १० शिरो के हाथ भाव से मन में विद्वत्ति  
 ११ प्राणा १२ वेदम चलने की १३ धामन स्थिर रहने  
 की १४ भूमि पर सोने की १५ दुर्बलों की १६ धर्म

प्रत्यंग छेदने की १४ याचना नहीं करना १५ मोजनादि न मिलने की १६ रोग जनित पीडा की १७ कांटे आदि घुमने की १८ मलिन शरीर होने की १९ घावर सत्कार न होने की २० बिडला का मद न करना २१ ज्ञान की कमी से छेद खिन्न न होने की २२ तप में झपट्टा न होने देने की । इस प्रकार चाईस परीपह हैं ॥ ६ ॥

दसवें, ग्याहवें, बाहवें गुण स्थानवर्ती जीवों के चौदह परीपह सम्भव हैं ॥ १० ॥

केवली भगवान के विषारइ सम्भव परीपह हैं ॥ ११ ॥

छठे, सातवें, आठवें नौवें गुण स्थानवर्ती जीवों के चाईस परीपह हो सम्भव हैं ॥ १२ ॥

शानावरण कर्म के उदय के निमित्त से पशा घोर भजान पचीपह होती हैं ॥ १३ ॥

दर्शन मोह के सद्भाव में अदर्शन और अन्तराय कर्म के सद्भाव में अज्ञान परीपह होती है ॥ १४ ॥

चारिण मोहनोय के उदय में मानता, धरति, ली, निपद्या, प्राज्ञेय, याचना, सहकार पुरस्कार । ये सात परीपह होती हैं ॥ १५ ॥

शास्त्री की नियारह परीपह वेदनीय के सद्भाव में होती हैं ॥ १६ ॥

एक ही जीव में एक साथ अधिक से अधिक उन्नीस परीपह हो सकती हैं ॥ १७ ॥

चारिण पांच प्रकार का है:—

१. सामायिक:—(सामायिक में समय छन्द का सर्व सम्पत्त्व, ज्ञान, संयम, तप । इनके साथ एवम स्थापित करना । तात्पर्य यह है कि राम देव का निरोध करके आवश्यक कार्यों में समता पाव बनाये रखना । )

२. द्वेदोरम्घापनाः— ( प्रमाद जनित दोषों का परिहार कर व्रत में स्थिर होना । )

३. परिहार विशुद्धिः—( जो तीस वर्ष तक सुख पूर्वक घर में रहा । धनन्तर दीक्षा लेकर जिग्ने लीर्षकर के बाद मूल में प्रत्याख्यान पूर्वका अभ्यसन किया । उसे परिहार विशुद्धि चारित्र की प्राप्ति होती है । )

४. सूक्ष्म साम्परायः—( दसवें गुण स्थान का चारित्र । )

५. यथास्थान चारित्रः—( यह पियारहवें गुण स्थान से होता है । )

यह पाँचों प्रकार का चारित्र संयुक्त प्रयोजक है ॥ १५ ॥

बाह्य इन्द्र का सम्बन्ध होने में जो दूसरों को देखने में आवे । वह बाह्य तप एह प्रकार का हैः—

दर्शन मोह के सद्भाव में अदर्शन धीर, अन्तराय कर्म के सद्भाव में अज्ञान परीपह होती है ॥ १४ ॥

आरिज मोहनोय के उदय में नग्नता, अरति, छी, निपट्टा, भाक्पेस, याचना, सरकार पुरस्कार । ये सात परीपह होती हैं ॥ १५ ॥

बाकी की बियारह परीपह वेदनीय के सद्भाव में होती हैं ॥ १६ ॥

एक ही जीव में एक साथ अधिक से अधिक उन्नीस परीपह हो सकती हैं ॥ १७ ॥

आरिज पाँच प्रकार का है:—

१. सामाधिक:—(सामाधिक में समय लब्ध का कार्य सम्पन्नत्व, ज्ञान, संगम, तप । इनके साथ एतय स्थापित करना । तात्पर्य यह है कि राग द्वेष का निरोध करके भावस्पर्क कार्यों में समता भाव बनाये रखना । )

२. द्वेदोषस्थापनाः— ( प्रमाद जनित दोषों का परिहार कर अत में स्थिर होना । )

३. परिहार विगुद्धिः—( जो तीस वर्ष तक सुख पूर्वक घर में रहा । अनन्तर दीक्षा लेकर जिसने तीर्थंकर के पाद मूल में श्रयास्थान पूर्वका अभ्यसन किया । उसे परिहार विगुद्धि चारित्र्य की प्राप्ति होती है । )

४. सूक्ष्म साम्परायः—( दसवें गुण स्थान का चारित्र्य । )

५. यथास्यात चारित्र्यः—( यह विचारहर्षेण गुण स्थान ॥ होता है । )

यह पाँचों प्रकार का चारित्र्य संवरण प्रयोजक है ॥ १८ ॥

बाह्य ऋष्य का सम्बन्ध होने से जो दूसरों को देखने में पावे । वह बाह्य तप छद्म प्रकार का है—

१. घनघन—( भोजन का त्याग । )
२. अयमोदर्य—( भ्रूस से कम खाना । )
३. वृत्ति परि संख्यान—( माहार के लिये घर भादि की संख्या का नियम । )
४. रस परिरयाम—( पी भादि रसों का त्याग । )
५. विविक्त सम्यासन—( एकान्त स्थान में क्षयन व प्रासन । )
६. कायवनेज—( देह से समत्व त्याग कर तप करना । )

ये छद्म बाह्य तप हैं ॥ १६ ॥

जिसमें मानसिक क्रिया की प्रधानता हो । जो उनके देखने में न आवे, वह आन्तरिक तप छद्म प्रकार का है:—

१. प्रायश्चित्त—( प्रमाद जनित दोषों का क्षयन

करना । )

२. विनय—( पूज्य जनों में आदर भाव । )

३. शीघ्र श्रुत्य—( सेवा शुभ्रपा । )

४. शवाध्याय—( ज्ञानाभ्यास । )

५. व्युत्सर्ग—( अहंकार-ममकार का त्याग । )

६. ध्यान—( विरा की व्याकुलता का त्याग । )

ये छह अन्तरंग तप हैं ॥ २० ॥

ध्यान से पहने के पाँच तपों के क्रम से नौ, धार, दस, पाँच, दो भेद हैं ॥ २१ ॥

१. आलोचना—( अपने दोष का निवेदन गुह के सामने करना । )

२. प्रतिकर्मण—( किये गये अपराध के प्रति मेरा दोष मिथ्या हो, निवेदन कर पुनः जैसे दोषों से बचना । )





करना । )

२. दिनस—( पूज्य जनों में घादर भाव । )

३. शेषा शृत्य—( सेवा सुभूषा । )

४. आध्याय—( ज्ञानाभ्यास । )

५. द्युरसर्ग—( अहंकार-ममकार का त्याग । )

६. ध्यान—( विसृति की व्याकुलता का त्याग । )

ये छह अन्तरंग तप हैं ॥ २० ॥

ध्यान से पहने के पाँच तपों के क्रम से नौ, पार, दस, पाँच, दो भेद हैं ॥ २१ ॥

१. आशीषना—( अपने दोष का निवेदन गुह के सामने करना । )

२. प्रतिकर्मण—( किये गये अपराध के प्रति मेरा दोष मिथ्या हो, निवेदन कर पुनः छोड़े दो )

३. तदुभय—( आलोचना और प्रतिक्रमण इन दोनों का एक साथ करना । )

४. विवेक—( किसी कारण से अनामुक्त द्रव्य का या श्यामि हुए अनामुक्त द्रव्य का ग्रहण हो जाने, तो स्मरण कर उसका त्याग करना । )

५. व्युत्सर्ग—( मन में बुरे विचार आदि आने पर, उस दोष के परिहार के लिये ध्यान पूर्वक नियत समय तक कायोत्सर्ग करना । )

६. तप—( दोषों के परिहार के लिये अतृप्ततादि करना । )

७. छेद—( दोष दूर करने के लिये, कुछ समय की शीघ्रता का छेद करना । )

८. परिहार—( किसी भावी दोष के दूर करने के लिये, कुछ समय के लिये संयम से अतृप्त रचना । )

६. उदरम्यापना—( किसी बड़े दोष के दूर करने के लिये, पूरी दोषा का छेद करके फिर से दीक्षा देना । )

ये नौ प्रायश्चित्त के भेद हैं ॥२२॥

१. ज्ञान विनय—( मोक्षोपयोगी ज्ञान प्राप्त करना, उसका अभ्यास बालू रखना, धर्म्यस्त का स्मरण रखना । )

२. दर्शन विनय—( निर्दोष सम्यग्दर्शन पालन करना । )

३. चारित्र्य विनय—( सामायिकादि चारित्र्य के पालन करने में विला को सावधान रखना । )

४. उचचार विनय—( आचार्य आदि की समुचित विनय करना । )

यह विनय तप के चार भेद हैं ॥२३॥

जिनकी सेवा श्रुत्य की जाती है । वे दस प्रकार के

१. आचार्य—( जो वृत्तों का आचरण करावें । )
२. उपाध्याय—( मोक्षोपयोगी शास्त्रों के पाठक । )
३. तपस्वी—( कठोर तप करने वाले । )
४. दीक्ष—( शिक्षा लेने वाले । )
५. रत्नान—( जिनकी देह रोषाकान्त है । )
६. षण—( जो स्वर्गियों की सन्तति के हैं । )
७. श्रुत—( दीक्षा देने वाले आचार्य की दिव्य परम्परा के । )
८. संघ—( अमणु समुदाय । )
९. साधु—( चिर काल के दीक्षित । )
१०. मनोज्ञ—( जनता में विशेष आदरणीय । )

इन दस प्रकार के साधुओं को शरीर से षण्ण्य प्रकार से संवापृत्य करना चाहिये ॥ २४ ॥

स्वाध्याय के पाँच भेद हैं:—

१. वाचना—( संघ और घर या दोनों को निर्दोष रीति से पढ़ना । )
  २. पृच्छना—( संका मिटाने के लिये पूँछना । )
  ३. अनुपेक्षा—( पड़े हुये पाठ का पुनः २ चित्रन करना । )
  ४. प्राम्नाय—( पाठ का शुद्धता पूर्वक उच्चारण करना । )
  ५. धर्मोपदेश—( धर्म कथा करना । )
- ये पाँच प्रकार का स्वाध्याय है ॥ २५ ॥

द्युत्तरार्ध तप के दो भेद हैं:—

१. बाह्योपधि त्याग—( धन, धान्य, मकानादि बाह्य परिग्रह से ममता का त्याग । )

२. अन्तरोपधि—( लोभादि रूढ धारण परिणाम अन्तरंग परिग्रह का त्याग । ) ये दो भेद हैं ॥२९॥

सतत संहनन मात्रे का एक विषय में पिता वृत्ति का रोहना ध्यान है । जो अन्तर्गुह्य तक होता है ॥२९॥

१. मार्तण्डध्यान—( जो दुःख की व्याकुलता में निमित्त है । )

२. रोद ध्यान—( जो क्रूर परिणामों के निमित्त है । )

३. पर्ण ध्यान—( जो गुण राग और अज्ञान का लक्ष्य है । )

४. शुक्ल ध्यान-( मन की अत्यन्त निर्मलता से जो एकाग्रता होती, वह । ) ये ध्यान के चार भेद हैं ॥२८॥

प्राप्त के दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं ॥२९॥

अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिये बारम्बार चिन्ता करना, पहला ध्यान है ॥३०॥

प्रिय वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति के लिये निरन्तर चिन्ता करना, दूसरा ध्यान है ॥३१॥

बेदना के होने पर उसके दूर करने के लिये लगातार शोध करना, तीसरा ध्यान है ॥३२॥

आगामी विषय की प्राप्ति के लिये सदैव चिन्तन करना, चौथा ध्यान है ॥३३॥

वह ध्यान अविरोध (प्रथम



तक ), देश विरत ( पाँचवे गुण स्थानवर्ती जीवों के )-  
प्रमत्ता संयत (छठे गुण स्थानवर्ती मुनि) के होता है ॥१८॥

१. द्विगान्धी, २. मृगान्धी, ३. चोर्वाग्धी,  
४. पश्चिद्गान्धी ( द्विधा, मूँड, चोरी, विनय संरक्षण  
(पश्चिद्) के लिये सनन चिनचन करना ) ये चार प्रकार  
का रोड ध्यान है, इसका सम्भाव्य अविरत ( पक्षियों में  
पाँचवे गुणस्थान तक ) और देश विरत (पाँचवीं) गुणस्थान  
वर्ती जीवों के वाया जाता है ॥१९॥

ध्याता, ध्याय, ध्यातृ, संस्थान । इनको विचारणा  
के निमित्त मन को एकाग्र करना चर्ची ध्यान है —

१. ध्याता विचर- ( जो जिन देव की ध्याता है वह प्रचरण  
है । ऐसा किसी भी परार्थ के विचार करने समय मन  
करना । )

२. अपाय विषय—( जो मिथ्या मार्ग पर स्थित है उनका मिथ्या मार्ग से छुटकारा कैसे हो । इस और सदैव विचार करना । )

३. विपाक विषय—( द्रव्य, क्षेत्र, कास भव, भाव को अपेक्षा कर्म कैसे कैसे फल देते हैं । इसका निरन्तर चिन्तन करना । )

४. संस्थान विषय—( लोक का आकार और उसके स्वरूप के चिन्तन में अपने मन को लगाना । )

ये धर्मध्यान के चार भेद हैं ॥३६॥

आदि के दो शुक्ल ध्यान ( पृथक्त्व वितर्क, एकत्व वितर्क ) पूर्व विद्य के होते हैं ॥३७॥

बाद के दो ( सूक्ष्म किया प्रतिपाती, व्युपरत्त किया

निवृत्ति ) शुक्ल ध्यान, संयोग केवली और अयोग केवली के होते हैं ॥३८॥

पृथक्त्व वितर्क, एकत्व वितर्क, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपत्ति, अत्युपरत क्रिया निवृत्ति ये चार शुक्ल ध्यान हैं ॥३९॥

पहला शुक्ल ध्यान तीनों योग वालों के, दूसरा किसी एक योग वाले के, तीसरा काय योग वालों के, चौथा अयोग केवली के होता है ॥ ४० ॥

प्रथम के दो एकाग्रता वाले ( पूर्ववारी ) के सवितर्क और संबोधन होते हैं ॥ ४१ ॥

दूसरा ध्यान संबोधन है ॥ ४२ ॥

वितर्क का अर्थ भ्रूत है । भ्रूत ज्ञान को वितर्क

[ ८२ ]

( यानि विशेष प्रकार से त्रुटि करने को बिसर्क )' कहते हैं ॥ ४३ ॥

मर्ष ध्वन्जन घोर योगों को पतटन को बोधार्थ कहते हैं ॥ ४४ ॥

सुध्वन्द्रष्टि ( अद्विरत ), व्यावक ( विरताद्विरत ),  
द्विरत ( सर्वद्विरत = महाप्रती ), धनन्तानुबन्धी का  
विधयोजन करने वासा, दर्शन मोह का क्षय करने वासा,  
उपशान्त भ्रंशो पर आरुद्र प्राणी, उपशान्त मोह वासा,  
क्षपक श्रेणी पर आरुद्र प्राणी, क्षीण मोह गुणस्थान  
वर्ती जीव, जिनेन्द्र मगवान : ये एतत् स्थान धनुष्म से  
अर्धस्थात अर्धस्थात गुणी निर्बन्ध वाले हैं ॥४५॥

पुनाक ( जिनके मूलगुण भी पूर्णता को प्राप्त नहीं

निवृत्ति ) शुक्ल ध्यान, सम्योग केवली और प्रयोग केवली के होते हैं ॥३८॥

पृथक्स्थ वितर्क, एकस्थ वितर्क, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात्ति, श्युपरत क्रिया निवृत्ति ये चार शुक्ल ध्यान हैं ॥३९॥

पहला शुक्ल ध्यान तीनों योग वालों के, दूसरा किसी एक योग वाले के, तीसरा काय योग वालों के, चौथा प्रयोग केवली के होता है ॥ ४० ॥

प्रथम के दो एकाग्रय वाले ( पूर्ववारी ) के सवितर्क और सवोचार होते हैं ॥ ४१ ॥

दूसरा ध्यान सवोचार है ॥ ४२ ॥

वितर्क का अर्थ श्रुत है । श्रुत ज्ञान को वितर्क

( याने विदोष प्रकार से त्रिक करने को वितर्क ) कहते हैं ॥ ४३ ॥

अर्षं व्यञ्जन और योगों को पसटन को वीचार कहते हैं ॥ ४४ ॥

सम्प्रादृष्टि ( अविरत ), आशक ( विरताविरत ),  
विरत ( सर्वविरत = महाव्रती ), अनन्तानुबन्धी का  
विसंयोजन करने वाला, दर्शन मोह का क्षय करने वाला,  
उपशम धैर्यी पर आरुद्र प्राणी, उपशान्त मोह वाला,  
क्षपक धैर्यी पर आरुद्र प्राणी, क्षीण मोह गुणस्थान  
वर्ती जीव, जिनेन्द्र भगवान् । ये दस स्थान धनुष्म से  
असंख्यात असंख्यात गुणो निर्जरा होते हैं ॥४५॥

पुनाक ( जिनके मूलगुण भी पूर्णता को प्राप्त नहीं

हैं । ), यक्षुश ( जो वृत्तों को पूरे तरह पातते हैं किन्तु  
 दारीर उपकरणादि की सामा तथा यशादि को लिप्सा  
 से युक्त हैं । ), कुशील ( १. प्रतिभेवना-परिग्रह के  
 आसक्ति बश, मूलगुणों और उदार गुणों को पातते हूँ  
 भी जो कदाचित् उदार गुणों को धिरोधना कर लेते हैं  
 वे प्रतिभेवना कुशील हैं । २ जो अल्प कथाओं पर विजय  
 पाकर भी संज्वलन कथाय के प्राचीन हैं । वे कथाय  
 कुशील हैं । ) निर्घन्ध ( राग द्वेष का समाव कर जो  
 अन्तःसुहृत् में केवल ज्ञान को प्राप्त करते हैं । )  
 स्नातक ( जो तर्कज्ञ हैं, वे स्नातक ) निर्घन्ध हैं । ये पाँच  
 प्रकार के निर्घन्ध साधु हैं ॥ ४६ ॥

संयम, धृति, प्रतिभेवना, तर्क, निग, सेव्या, उपाय,  
 स्थान इन आठ भेदों से पुनाकादि निर्घन्धों का ध्यास्थान

करता रहिये ॥ ४७ ॥

इस अध्याय में संवर, समिति, गुप्ति, पारिग, तप, धर्म, भावना, निर्जरा, मुनि गण आदि का वर्णन किया गया है ॥१॥

● इति नीर्वा अध्याय ●





॥ अथ दसवीं अध्याय ॥

● मोक्ष सत्य ●

मोक्ष के क्षय से घोर शमावरण, दर्शनावरण, मन्तराय के क्षय से केवल ज्ञान प्रकट होता है ॥१७॥

बन्ध के कारणों के नहीं रहने से, घोर निर्जरा द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का, विस कृत् क्षय होना ही मोक्ष है ॥२॥

तथा प्रौपशमिक, क्षायोप शमिक, प्रौदयिक, मध्यस्थ, भाव के अभाव होने से मोक्ष होता है ॥३॥

पर केवल सम्यक्त्व, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, घोर

सिद्धत्व भाव का अभाव नहीं होता ॥१४॥

सब कर्मों का वियोग होने के पीछे ही मुक्त जीव ऊपर की ओर लोक के अन्त तक जाता है ॥१५॥

पूर्व प्रयोग से ( पूर्व संस्कारों के वेग से ) अंग के अभाव से, कल्पन के टूटने से, सषा केर्व्व समन स्वभाव होने से, मुक्त जीव ऊपर को जाता है ॥१६॥

धूम्रार द्वारा घुमाये हुए चाक के समान, लेप से मुक्त सूँबड़ी के समान, अण्ड के बोँब के समान, पाग को शिखा ( ली ) के समान, इन द्रष्टाण्तों के अनुसार मुक्त जीव स्वभाव से ऊपर को ही जाता है ॥१७॥

धर्महित काय का अभाव होने से मुक्त जीव लोकान्त से ऊपर अलोककाल में नहीं जाता ॥१८॥

[ ६० ]

क्षेत्र, काल, गति, सिंग, तीर्थ, धारित्र, प्रत्येक बुद्ध  
सोपित, ज्ञान, घवमाहना, घन्तर, संख्या, भस्व बहुत्व,  
इन बारह बातों से सिद्ध जीव विभाग करने योग्य हैं ॥१॥

इस अध्याय में केवल ज्ञान का कारण,  
तथा बार परिणाम, मोक्ष, ऊर्ध्वगमन,  
सिद्ध भेदादि की प्रकृष्टता को गई है ॥१॥

● इति दसवां अध्याय ●

इस संघ में कहीं पर अज्ञान, भ्रम, पाप, स्वयं-  
 अहंकार, मर्त्य, रोग, आदि की गतनी रह गई हो तो उस  
 मूल के सिद्धे समस्त जन मुझे क्षमा प्रदान करें। क्यों कि  
 पाप की समुद्र में कौन गोते नहीं खाता ॥१॥

इस संघ अर्थात् जाने उत्सर्ग सूत्र का भाव पूर्वक  
 पढ़ने से एक उपवास करने का फल होता है, ऐसा  
 अष्ट मुनिराजों ने कहा है ॥२॥

गूढ विधिज्ञान से उपसंश्लेष, इस उत्सर्ग सूत्र, के, रच  
 विज्ञान, आचार्य की समा स्थायी की इस मन्त्रकार  
 करते हैं ॥३॥

[ ६२ ]

मह.भाषा तत्त्वार्थ सूत्र (मोक्ष दास्य)

१ पन्नासासजी जैन भार्गी टेकट दिल्ली निवासी को  
१९११,१९१२ कर मुक्त क. पं. सरदारमल जैन 'सचिवदानन्द,  
(मुपुत्र स्व. श्री. हनुमचन्द्रजी 'बैद्यरत्न') सिरोंच निवासी ने,  
भाषाक शुभला प्रति पदा, बुधवार ता० २६-१-१९  
श्री. धोर सं० २४६४ वि० सं० २०२५ को पूर्ण किया ।

॥ शुभम् भूयात् ॥

पद

(सर्ज-कैसे सपरी)

तेरी सारीरे अमरिया भूँ ही गुजरी ॥१॥

बचन मयो अचानी भाई, देखत भायो बुझापा ।  
हरमो कछु न कोनी भाई, भ्रम में भूख्यो भावा ॥

भटके भावा की अमरिया ॥२॥

ऊँची ऊँची पदवी पाई, दोनत सुख कभाई ।  
बूछे मरते भाई बहिने, तरख जरा रहि भाई ॥  
मोह नींद में ऐसा सोमा, पलकी खबर न पाई ।

छलके जीवन की अमरिया ॥३॥

सोच जरा कुछ मेरे भाई, करते हित की बातें ।  
बरना दुर्गति होगी तेरी, वहाँ जाये जाते ॥

पीई पूछे न सवपिया ॥४॥

मानुष मक् दुर्लभ हैं ध्याये, सम्यक ज्योति जवाले ।  
सत् चित् चानन्द में तन्मय हो, अपने हो गुरु गाले ॥

विष्ट जिव पुर की अमरिया ॥५॥

पद

सुन बग मानो, हित की बानी, सुकर निज की पदचान रे

तेरी छुट जाय, सब भाँवरिया ॥१॥

चारों गति में बहम कर्म पर समस्त भाव का डेरा ।

समस्त मिटाये विध्या परिष्कृति, हो विष्णुपुर में बसेरा ॥

तेरा हो विष्णुपुर में बसेरा ॥२॥

कठिन कठिन तेरे नर सब बया, क्यों विदरों में नँदाये ।

इनमें रखपच करके जानी, कधी न गिर बर काये ॥

जानी कधी न विष बर काये ॥३॥

साधु बन बन करके निज दिन, सोनी जाये तेरी ।

कत्र चित्त सात्म्य करल नहोनिज, विडे जगज की देये ॥

तेरी विडे जगज की देरी ॥४॥

पद

(सर्व-जगत् जगत् है बदलने का)

जगत् जगत् जगत् विनशायी जाता ॥१॥

निरभिसार हो जो कोई प्यारा ।  
मुक्ति रमा को वह पा जाता ॥२॥

मोह महा मद नाशन हाथी ।  
सब जीवों की हूँ हितकारी ॥  
तेरा सहाय तेरे कामा ।  
उत्तु धरु विष मारण पा जाता ॥३॥

सन् चिन् सानन्द की तू राता ।  
सुख में निज स्वरूप को पाता ॥  
निज में निज से भीन होय कर ।  
फिर निजमें ही वह रम जाता ॥४॥



(सर्व-बहारो फूल बरसामो०)

तारा सजते मैंने मृगको, मुझे निज रूप भाया है ।  
सभी दुखिया मिटो मगकी, निज में निज समाया है ॥१॥

सतुल सुत ज्ञान का सारो, दरस बल पूर्ण हितकारो ॥  
साथ सामर्थ्य अपनी को, सहज आनन्द छाया है ॥२॥

इस्य मोर भाव. जमों से, कुवा हूँ मैं बनाये से ।  
पुढ मय से बरस निजको, विभासी को मिटाया है ॥३॥

निरंजन निदिकारो है, सदाबन्द बीतरागो है ॥  
सर्वज्ञान्य अपने में हि, ज्ञापक भाव पाया है ॥४॥

पद

- (छत्र-वार २ पुके का समझाये, पायल की संकार)
- निज स्वयं को पून विद्यालय, मङ्कल किंते संवार ।  
बनव मारल के पुको, बहजा रहा संवार ॥१॥
- बाव बनादी से अपने को पून रहा ।  
पर में मङ्कल कूँटी करके पून रहा ॥
- कर परिष्कृति को सब तो सब है, क्यों ही रहा संवार ॥२॥
- निज स्वयं ही, सब स्वयं पूं बन गया ।  
निविहार हो, तबिकारी बूँ हो गया ॥
- संभल कर बृह होय में प्राजा, निज अनुभव को बार ॥३॥
- सत विन् धानन्द बहूमानन्द वा स्वामी है ।  
अनुभव महिमा छई बग में नामो है ॥
- अपनी राज्यानी जाने को, कर सब निज हीवार ॥४॥

पद

शून्य बन प्रानी, हिय की प्रानी, तुझर निम्न की पहचान रे

तेरी छुट जाय, जब भाँवरिया ॥१॥

बारों गति में बरम बरम पर ममत भाव का डैर ।

कामुक मिटादे निम्न्यः परिणति, हो शिवपुर में बसेर ॥

तेरा हो शिवपुर में बसेर ॥२॥

कटिन कटिन ते' नर जब प पा, क्यों विषयों में गंवाये ।

हृदमें रखपच करके प्रानी, कभी न शिव पर पाये ॥

प्रानी कभी न शिव पर पाये ॥३॥

धामु पल पल करके निज दिन, बोनी पाये तेरी ।

सत् चित ध्यानम् धारण गहोनिज, मिटे क्षणत की केरी ॥

तेरी मिटे क्षणत की केरी ॥४॥

[ ६१ ]

दह

(हर्य-जय कर है बदरमे माता)

बद बद प्रव विनकारी माता ॥१॥

निर्विभाव हो जो कीई भ्याता ।  
मुक्ति एसा जो बहु पा जाता ॥२॥

मोह महा मर मायन हारी ।  
सब भीनों की है द्विभायी ॥  
तेज सहाय तिये बाबा ।

जन् सप विव मारण पा जाता ॥३॥

सन् विन् सानन्द की वृ बाता ।  
गुरु से निन्न स्वरूप को माता ॥  
निन्न से निन्न से भीन होय कर ।  
किर निन्नये ही बहु एव जाता ॥४॥

पद

धुन बन आनी, हिउ की आनी, सुकर निज की बहुआन री

तेरी छूट जाय, भव भावरिया ॥१॥

आरों गति में कदम कदम पर अमल भाव का डेर ।

अमल मिटादे मिथ्या परिलखि, हो शिवपुर में बसेरा ॥

तेरा हो शिवपुर में बसेरा ॥२॥

कठिन कठिन ते' नर भव पना, क्यों विपयों में नंवाये ।

हनमें रचपच करके आनी, कभी न शिव पद पाये ॥

आनी कभी न शिव पद पाये ॥३॥

आयु पल पल करके निज दिन, सोनी जाये तेरी ।

घात बिह आरम्भ धरए गहोनिज, मिटे जयत की फेरी ॥

तेरी मिटे जयत की फेरी ॥४॥

दह

(उर्वे-अव अव है बदरमे माता)

अव अव अव त्रिनवाटी माता ॥१॥

निरविमान हो जो कोई प्याता ।

मुक्ति रमा को तब या ज्ञान ॥२॥

मोह महा अर मादन हाथी ।

सब भीषों की हूँ हियवाटी ॥

तेज सहाय तेने बाबा ।

सत् हाथ त्रिनवाटी या माता ॥३॥

सन् चिन् सानन्द की मू माता ।

दुःख ने निर स्वरूप को माता ॥

निर में निर से भीन होय कर ।

किर निरवे ही बह रम माता ॥४॥

पंच

सुन जब शानी, हिउ की शानी, तुफर निज की पहचान दे

तेरी छूट जाय, सब भांवरिया ॥१॥

घारी गति में बहम कदम पर समस्त माद का डैरा ।

समस्त मिटाडे मिथ्या परिणति, हो शिबपुर में बसेरा ॥

तेरा हो शिबपुर में बसेरा ॥२॥

कठिन कठिन ते' गर सब पया, क्यों विपरी' में गंवाये ।

इनमें रखपच करके शानी, कभी न शिब पद पाये ॥

शानी कभी न शिब पद पाये ॥३॥

आयु बल पम करके निज दिन, शोभी चाये तेरी ।

सत् बित आनन्द उरल गहोनिज, मिटे जगत की देरी ॥

तेरी मिटे जगत की देरी ॥४॥

दृढ़

(सर्व-ज्ञान का है बरखो काका)

बस बस बस बिनकारी काका ॥१॥

निर्विचार हो जो की काका ।

मुक्ति का जो बड़ का काका ॥२॥

मोह का बस काका हापी ।

सब चीजों की है दिवकारी ॥

तेरा काका तेरे काका ।

हम हापी निब मारन का काका ॥३॥

हम बिन् काका की नू काका ।

दुःख से निब स्वकन का काका ॥

निब से निब से भीन होव कर ।

बिब निबसे हो बड़ रव काका ॥४॥



एव

सुन जग शानी, हिउ को शानी, ठुकर निज को पदुवान रे

तेरी छूट जाय, सब भाबरिया ॥१॥

चारों गति में कदम कदम पर ममत भाव का डेर ।

समस्त निटारे निम्ना परिणति, हो सिवपुर में बसेरा ॥

तेरा हो सिवपुर में बसेरा ॥२॥

कठिन कठिन तेरे नर भव पया, क्यों कियों में गुंवाये ।

इनमें रखवच करके शानी, कभी न शिव पर पाये ॥

शानी कभी न शिव पर पाये ॥३॥

साधु बल बल करके निज दिन, बोनी जाये तेरी ।

इतु चित्त मानस सरल महोनिज, निदे जगत की देरी ॥

तेरी निदे जगत की देरी ॥४॥

[ ६१ ]

एव

(हर्म-जय जय है अवरुणे माता)

जय जय जय त्रिनवाली मन्त्रा ॥१॥

निर्मिताय हो जो कोई मन्त्रा ।

मुक्ति रमा की बहु पा जाय ॥२॥

मोह महा भद नाचन हाये ।

सब जीवों की है हितजाये ॥

तेज सहाय तेने नामा ।

एतु एतु विद मारण पा जाय ॥३॥

सन् धिन् मानन्द की तु वता ।

तुम्ह मे निम्न स्वक्य को मता ॥

निम्न में निम्न से नीन होय कर ।

धिर निम्नै ही बहु रय मता ॥४॥